कुपोषण और टीबी पर एक नीति की तलाश

सचिन कुमार जैन

मध्यप्रदेश के रीवा के श्याम शाह चिकित्सा महाविद्यालय (गांधी मेमोरियल हॉस्पिटल) के बाल रोग विभाग के डॉक्टरों ने एक अध्ययन किया (*इंडियन पीडियाट्रिक्स,* 2013)। इससे पता चला कि अस्पताल के पोषण पुनर्वास केंद्र में एक साल की अवधि में भर्ती किए गए 104 अति गंभीर कुपोषित बच्चों में से 23 (22.1 प्रतिशत) बच्चे टीबी से पीड़ित थे। विडम्बना देखिए कि टीबी प्रभावित अति गंभीर कुपोषित 14 बच्चों (61 प्रतिशत) की उम्र 12 महीने से कम थी। 23 में से 22 बच्चे एनीमिया के शिकार थे। टीबी अब छोटे बच्चों में बहुत तेज़ी से फैल रही है और कुपोषण के साथ मिलकर उनका जीवन छीन रही है।

दुनिया भर में बच्चों की मौतों के 10 प्रमुख कारणों में से एक है टीबी। *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साइंटिफिक एंड रिसर्च पब्लिकेशन* में जुलाई 2013 में प्रकाशित एक शोध पत्र के मुताबिक हर साल दुनिया भर में लगभग 10 लाख बच्चों में टीबी पाया जाता है और इसके कारण 1 लाख बच्चों की मृत्यु होती है। आम तौर पर बच्चों के परिवार में ही किसी निकट सम्बंधी या परिजन के संपर्क से बच्चे इसकी चपेट में आ जाते हैं। भारत में वर्ष 2006 से 2013 के बीच 14 साल से कम उम्र के 6.20 लाख ऐसे बच्चों की पहचान की गई जो टीबी से पीड़ित थे। हर साल लगभग 75 हज़ार बच्चे इस संख्या में जुड़ जाते हैं। एक आकलन के मुताबिक भारत में कुल टीबी पीड़ितों में से 5 से 7 प्रतिशत बच्चे हैं। बच्चों में कुपोषण के संकट पर तो खूब बात हो रही है मगर कुपोषण-टीबी के रिश्तों पर बहुत थोड़ी चर्चा हो रही है। अभी टीबी से प्रभावित व्यक्तियों में कुपोषण के तत्व को कुछ हद तक देखा जाता है, परन्तु कुपोषण से प्रभावित बच्चों में टीबी की जांच ज़रूरी नहीं मानी गई है। वास्तविकता यह है कि जब बच्चों में कुपोषण का फैलाव बड़े स्तर पर हो, तो हम टीबी के आघात को नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते। सबसे पहले ज़रा यह समझ लेते हैं कि क्या वास्तव में टीबी बच्चों की बीमारी है भी या नहीं?

ओस्लो विश्वविद्यालय के डीटी नगा क्युंह (2009) के अध्ययन के मुताबिक 1 से 4 वर्ष की उम्र के बच्चों में टीबी के विकसित होने की सबसे ज़्यादा आशंका होती है क्योंकि इनके संदर्भ में खखार का सही नमूना लेकर टीबी जांच पाना संभव नहीं होता है। दूसरी तरफ यह वह उम्र है जब बच्चे को विकास के लिए विशेष पोषणाहार की ज़रूरत होती है और इसके न मिल पाने की स्थिति में वह संक्रमणों का शिकार हो जाता है। 5 वर्ष तक की उम्र के बच्चों में संक्रमण से टीबी बीमारी उभरने की संभावना 20 प्रतिशत तक ज़्यादा होती है। इसी अध्ययन में यह भी बताया गया कि घर के आसपास गंदगी, साफ वातावरण और खुलेपन का अभाव, कम आमदनी, बुनियादी स्वास्थ्य सेवाओं की अनुपलब्धता और समय रहते टीबी की जांच की सुविधाएं उपलब्ध नहीं होने के कारण बच्चों में इसका प्रकोप बढ़ा है।

हम जानते हैं कि एंटीबाडीज़ बीमारियों के आक्रमण से शरीर की रक्षा करते हैं। वास्तव में ये प्रोटीन ही होते हैं, जो बीमारी के आक्रमण की स्थिति में एक दीवार बन कर उससे लड़ते हैं। अति गंभीर कुपोषण बच्चों के शरीर में प्रोटीन को खत्म कर देता है, जिससे भीतरी प्रतिरोधक क्षमता कमज़ोर पड़ जाती है। एक ओर गरीबी और सही व्यवहार के अभाव में बच्चों के भोजन में प्रोटीन की कमी होती है, तथा दूसरी ओर टीबी शरीर में मौजूद प्रोटीन और वसा को खत्म करती जाती है।

बच्चों में कुपोषण का स्तर बहुत ऊंचा होने के बावजूद भी कुपोषण प्रबंधन कार्यक्रम में टीबी जांच-उपचार की ठोस व्यवस्थाएं नहीं हैं। मध्यप्रदेश में अति गंभीर कुपोषित बच्चों के उपचार के लिए 240 पोषण पुनर्वास केंद्र हैं। यहां हर साल लगभग 40 हज़ार बच्चों का उपचार किया जा रहा है और दिशानिर्देशों में व्यवस्था है कि केंद्र में आने वाले बच्चों की टीबी की जांच (मोंटू जांच) की जाएगी, परन्तु तथ्य यह

है कि वहां जांच की बुनियादी सुविधाएं भी उपलब्ध नहीं करवाई गई हैं। आंगनवाड़ी और स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं को तैयार नहीं किया गया है कि वे आंगनवाड़ी में दर्ज बच्चों, खास तौर पर कम वज़न और अति कम वज़न के बच्चों के परिवारों में यह देखें कि क्या किसी परिजन में टीबी के लक्षण हैं जिनके संपर्क में आकर बच्चा भी संक्रमित हो सकता है? टीबी भी बच्चों के वज़न में वृद्धि को रोकने या वज़न कम करने का काम करती है। इस लिहाज़ से कुपोषण के सामुदायिक प्रबंधन में टीबी पर ध्यान देना ज़रूरी हो जाता है।

इसके अलावा कोशिकाएं भी हमारे शरीर को बैक्टीरिया के कारण होने वाली बीमारियों से बचाती हैं। अति गंभीर कुपोषण कोशिका आधारित प्रतिरोध क्षमता को प्रतिकूल प्रभावित करता है। यही कोशिका आधारित प्रतिरोध क्षमता बच्चों को टीबी से सुरक्षित रखने की ज़िम्मेदारी निभाती है। मतलब गंभीर कुपोषण का बच्चों में टीबी के प्रभाव के विस्तार से बहुत सीधा सम्बंध है।

हम जानते हैं कि जब बच्चों को पर्याप्त पोषण नहीं मिल पाता है तो प्रोटीन की कमी के कारण उनकी कोशिकाएं और ऊतक टूटने या क्षतिग्रस्त होने लगते हैं। टीबी के जीवाणु ऊतकों और कोशिकाओं के क्षतिग्रस्त हिस्सों से भी शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। तृतीय राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के मुताबिक भारत में 5 साल से कम उम्र के 16.4 प्रतिशत बच्चे अतिकम वज़न के हैं। इसका मतलब यह है कि लगभग 2 करोड़ बच्चों पर टीबी संक्रमण का ज़ोखिम बहुत ज़्यादा है, परन्तु हमारे कुपोषण प्रबंधन कार्यक्रम में इस पहलू को कोई खास तवज्जो नहीं दी गई है।

स्वास्थ्य के नज़रिए से बच्चों में टीबी की पहचान के लिए पहल शुरू हुई है। राष्ट्रीय टीबी नियंत्रण कार्यक्रम ने इंडियन एकेडमी ऑफ पीडियाट्रिक्स के साथ मिलकर फेफड़ों और लसिका ग्रंथियों की टीबी की जांच के लिए मापदंड तय किए हैं। इसके तहत ज़रूरत और बच्चे की स्थिति के अनुरूप शारीरिक लक्षणों की पहचान, खखार की जांच, परिवार में टीबी का इतिहास, ट्यूबरक्युलिन परीक्षण, छाती का एक्सरे और ऊतकों के परीक्षण वगैरह को शामिल किया गया है।

जैसा कि वयस्कों में होता है, बच्चों के लिए भी तीन चरणों में उपचार प्रस्तावित है। टीबी की पहचान, उसका वर्गीकरण और उपचार। इस पूरी कोशिश में केवल और केवल दवा ही है। सामान्य समझ तो यही कहती है कि पोषण की कमी भी टीबी का एक कारण है, टीबी के उपचार के दौरान भी पौष्टिक भोजन अनिवार्य है और उपचार के बाद भी।

6 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के परिवारों में टीबी से ग्रस्त सदस्य की पहचान करने और बच्चों में कोई लक्षण पाए जाने पर उसकी रोकथाम के लिए आईएनएच दिए जाने का प्रावधान किया गया है, पर केन्द्रीय आंतरिक मूल्यांकन से पता चला कि 35 प्रतिशत बच्चों को आईएनएच नहीं दिया गया।

आम तौर पर खखार की जांच करके यह पता लगाया जाता है कि व्यक्ति को टीबी है या नहीं, परन्तु बच्चों में यह जांच बहुत मुश्किल से सच्चाई बता पाती है। इस जांच में सूक्ष्मदर्शी से बलगम या खखार में बैक्टीरिया को देखा जाता है। बताते हैं कि इससे 15 प्रतिशत मामलों में ही टीबी होने का पता चल पाता है। इसी तरह बलगम के कल्चर की जांच की जाती है जिससे 30 से 40 प्रतिशत प्रकरण पता चल जाते हैं।

जिन क्षत्रों में टीबी एक महामारी नहीं है, वहां तीन लक्षणों से इसकी पड़ताल की जाती है। पहला, यदि बच्चे को लगातार खांसी हो रही है और सामान्य उपचार से वह स्वस्थ नहीं होता है। दूसरा, उसका वज़न कम हो रहा हो। तीसरा, यह देखा जाता है कि क्या परिवार में बच्चे के किसी निकट सम्बंधी को टीबी है, जिसके कारण वह भी संक्रमित हो गया है। ऐसी स्थिति में पहले उसके फेफड़ों का एक्सरे किया जाता है और फिर उसका ट्यूबरक्युलिन या मोंटू परीक्षण किया जाता है। इस परीक्षण में बांह की चमड़ी के ठीक नीचे ट्यूबरक्युलिन नामक दवा सुई के माध्यम से डाली जाती है। 2-3 दिन बाद यदि वहां सूजन या उभार आ जाता है तो बच्चे को टीबी से प्रभावित माना जाता है। देखा गया है कि टीबी होने के बावजूद ज़्यादातर बच्चों

में छाती के एक्सरे से भी यह पता नहीं चल पाता है। दिक्कत यह है कि बहुत छोटे बच्चों की खखार की जांच करना बहुत ही मुश्किल काम होता है क्योंकि जांच के लिए फेफड़ों की गहराई से खखार को निकालने की ज़रूरत होती है ताकि जांच के लिए सही नमूना मिल सके। ऐसा न किया जाए तो बच्चों में टीबी होने के बावजूद उसका पता नहीं चल पाता है। इसकी पड़ताल और सही निष्कर्ष तक पहुंचने के लिए आमाशय से पानी निकाला जाता है। इसमें टीबी के बैक्टीरिया की मौजूदगी का 40 से 92 प्रतिशत तक पता चल जाता है पर यह तकनीक कठिन होती है और कुशल प्रशिक्षित और सधे हुए स्वास्थ्य कार्यकर्ता द्वारा ही सम्पादित की जा सकती है। दूसरे तरीके में फेफड़ों का पानी निकाल कर जांचा जाता है। यह बहुत तकलीफदेह प्रक्रिया होती है। व्यापक प्रकोप के बावजूद बच्चों में टीबी की जांच और पहचान के लिए सरल तकनीकें उपलब्ध नहीं हैं। अब टीबी की जांच के लिए 8 नई किस्म की जांचें सामने आई हैं, पर इनमें से एक भी जांच खास तौर पर बच्चों के लिए नहीं है।

बच्चों में टीबी की स्थिति पर एक राष्ट्रीय तकनीकी कार्यसमूह बनाया गया था। इसकी पहली बैठक जुलाई 2013 में हुई थी और इसने सुझाव दिया था कि टीबी की जांच के लिए नमूनों का ज़्यादा संग्रहण हो, प्रशिक्षण को बढ़ावा दिया जाए और उपचार पूरा हो, यह सुनिश्चित किया जाए। मगर इस समूह ने भी बच्चों में प्रतिरोध क्षमता बढ़ाने, पोषण की ज़रूरत और कुपोषण प्रबंधन कार्यक्रम की उपेक्षा की है। ***(स्रोत फीचर्स)***